लहरी

अनुवादक

स्वामी मुक्तानन्द परमहंस

श्री गुरुदेव आश्रम
गणेशपुरी

मल्लेश्वरी

अनुवादक

स्वामी मुक्तानन्द परमहंस

श्री गुरुदेव आश्रम
गणेशपुरी

लल्लेश्वरी

लल्लयोगेश्वरी की वाणी

अनुवादक

स्वामी मुक्तानन्द परमहंस

श्री गुरुदेव आश्रम
गणेशपुरी

प्रकाशक :
श्री गुरुदेव आश्रम
गांवदेवी-गणेशपुरी
पोस्ट-वज्रेश्वरी
जिला-थाना (महाराष्ट्र)

प्रथम आवृत्ति :
अक्तूबर—१९६८

द्वितीय आवृत्ति
अक्तूबर—१९७२

मुद्रक :विनोद प्रिंटिंग सर्विस, द्वारा
शाहदरा प्रिंटिंग प्रेस, दिल्ली-३२

प्रस्तावना ... ५

लल्लसूक्ति ... १३

लल्लवाक्य ... ३४

प्रश्नोत्तरी ... ५१

प्रस्तावना

•

प्राकृतिक सौन्दर्य के कारण जगत में जो कई सदियों से आकर्षण का केन्द्र है, वह कश्मीर की भूमि, पूर्वकाल में सिद्ध-साधक दर्शनकारों तथा इस देश की विशिष्ट संस्कृति का उद्भव-स्थान भी रही है। कश्मीर अनेक सिद्धों का साधना-स्थल रहा है। उनमें शिवभक्त योगिनी लल्लेश्वरी का भी नाम है जिसने आज से लगभग ६०० वर्ष पूर्व कश्मीर के एक पंडित कुटुम्ब में जन्म लिया था। योगिनी लल्लेश्वरी अपने पूर्वाश्रम में गृहिणी थी। प्रारब्ध क्षीण होते ही उसने घर त्याग दिया और अपने असली घर की खोज में घूमने लगी। सिद्ध श्रीनाथ नाम के एक योगी-गुरु की कृपा उसे प्राप्त हुई और स्वस्वरूप का साक्षात्कार हुआ। बाद में वह अनेक स्थानों पर घूमती-फिरती हुई अनेकों को मार्गदर्शन एवं उपदेश करती रही।

कश्मीर के लोगों पर लल्लेश्वरी का काफी प्रभाव पड़ा है। उसके तत्त्वज्ञानपूर्ण काव्यात्मक पदों को लोग घर-घर में गाते रहते थे। हिन्दू-मुस्लिम सब लोगों ने उसका समान आदर किया है। वह शिवभक्त होने पर भी किसी भी प्रकार के सम्प्रदाय से परे सत्य की पुजारिन थी। उसके पद सिद्धवचन हैं जिनमें उसने अपने साधना के अनुभवों और अन्तिम प्राप्ति का स्पष्ट

और निःसंकोच कथन किया है। उसकी उक्तियाँ 'लल्लवाक्य' नाम से जानी जाती हैं।

शाश्वत आन्तरिक सुख की प्राप्ति के लिए पारमार्थिक ज्ञान की आवश्यकता रहती है। संतों की अनुभव वाणी में ही इस ज्ञान का मूल निहित रहता है। इसलिए परमार्थ मार्ग में शास्त्र, सम्प्रदाय या प्रवचन को छोड़कर अनुभवसिद्ध प्रत्यक्ष-ज्ञानी के सत्संग और वाणी को महत्त्व दिया जाता है। शास्त्र-पठन से विषय की जानकारी तो होती है लेकिन उसका अनुभव नहीं मिलता। जो ज्ञान अनुभव में परिणत नहीं होता है, वह केवल वाङ्मय उपदेश का ही रूप ले लेता है। अतः विद्वानों की अपेक्षा अनुभवी संतों का प्रभाव जिज्ञासु साधक के मन पर अधिक पड़ता है। विद्वान न होने पर भी उनकी वाणी शास्त्र से ऊपर होती है। उनका अनुभव जाति, सम्प्रदाय, धर्म, देश-काल सबसे परे होता है। सर्व भेदों से अतीत एक अद्वैत सत्य में उनकी स्थिति होती है। उनका अभेदात्मक चित्स्वरूप सर्वत्र परमात्मस्फूर्ति का स्वयंप्रकाशित अनुभव होता है।

परमार्थ पंथ के अन्य साधकों के मार्गदर्शन हेतु संत अपने साधनकाल और सिद्धिप्राप्ति के अनुभवों को कभी-कभी कहते हैं। सब संतों की वाणी एक ही होती है, इसलिए वह देश और काल की मर्यादा से सीमित नहीं होती, लेकिन जब भी कभी भूत-भविष्य-वर्तमान में, किसी भी स्थान पर वह जिज्ञासु के श्रवण-पठन का विषय बनती है, सर्वत्र समान आदर पाती

है । कोई भी साधक किसी भी सम्प्रदाय को अपनाये अथवा किसी भी मार्ग का अनुसरण करे, अन्ततः सबकी अन्तरसाधना और अन्तिम सिद्धि समान होती है । सत्य एक है, ईश्वर भी सबके लिये एक ही है । इस प्रकार लल्लेश्वरी के उपदेश उसके अपने आध्यात्मिक मार्ग के अनुभव हैं । अतः लल्लवाणी के दो मुख्य अंग हैं—साधना और सिद्धि । लल्लवाणी में साधक के साधना-स्वरूप का परिचय मिलता है, जो निम्न प्रकार है :

साधक-जीवन का आरम्भ आत्मजिज्ञासा की उत्पत्ति से होता है और उसकी परिसमाप्ति आत्मानुभव की प्राप्ति में होती है । मूल स्रोत से विच्छिन्न जीव अपना वास्तविक स्वरूप भूलकर शरीर से तादात्म्य स्थापित कर लेता है और शरीर के सम्बन्धियों को अपना सम्बन्धी समझ लेता है । जड़-चेतन का यह ग्रन्थि-बन्धन ही संसारावस्था है । इस स्थिति में उसके सुख-दुःख के भोग का कारण आत्मस्वरूप की विस्मृति है । इस विस्मृति के नष्ट होने के प्रयत्न का नाम है साधना ।

सर्वप्रथम साधक सोचने लगता है कि 'मैं कौन हूँ' 'ईश्वर कौन है' 'मेरा और उसका नाता क्या है' 'यह जगत क्या है'—इस सत्य को समझने के लिये वह अनेक मार्गों पर चलने लगता है । तीर्थयात्रा, नामस्मरण, गुण-संकीर्तन, शास्त्र-पठन और अनेक प्रकार की उपासना-अनुष्ठान करता रहता है । सत्य की खोज में वह भटकता फिरता है, रुदन-आक्रंदन भी करता है, फिर भी धैर्य और दृढ़ता से चलता रहता है ।

आत्मविमर्श, तपस्या और साधना से उसके अन्तर का अनादिकाल का वासनासंस्कार-जनित मल साफ होने लगता है, अभिमान-अहंकार गलने लगता है, प्रपंच को नाशवान समझ कर वह ईश्वर-शरणापन्न होने लगता है। प्राप्ति का मार्ग ढूँढ़ता रहता है। ऐसी परिस्थिति में तत्त्वज्ञान प्राप्त करने के लिये एक गुरु ही उपाय है। ईश्वर करुणा से सद्गुरु की प्राप्ति हो जाती है और गुरु की कृपा से अंतर में ज्ञानाग्नि प्रदीप्त हो उठती है। वह समझने लगता है कि परम तत्त्व परमात्मा को बाहर नहीं लेकिन अपने अन्दर खोजना चाहिये। अन्य सब मार्गों को छोड़कर वह अब गुरुकृपा से प्राप्त एक ही मार्ग पर सन्तोष-समाधान और धैर्य से चलने लगता है। गुरु द्वारा बतलायी हुई साधना करते-करते प्राणापान में सोऽहम् का जाप होने लगता है। आखिर में 'अहं' छूटकर वह 'सो' अर्थात् परमात्मा के साथ एक हो जाता है। जिसकी खोज में वह दूर गया था वह घर में ही मिल जाता है। परमात्मा से अभिन्नता प्राप्त होने पर जिज्ञासा समाप्त होती है। वह अनादि-अनंत हो जाता है। उसे ऐसा अनुभव होता है कि वह पहले भी था, अभी भी है और आगे भी रहेगा। उसे लगता है कि ईश्वर का परिचय उसे पहले से ही था। उसके लिये सारा प्रपंच परमात्ममय हो जाता है। काम-क्रोध, राग-द्वेष और भय के लिये स्थान ही नहीं रहता। निन्दा-स्तुति, मान-अपमान, संतोष-संताप सब उसके लिये समान हो जाता है। व्यक्तित्व की स्मृति जल जाती है। स्वजन-परजन में एकता प्राप्त होती है। 'मैं' और 'तू' की दृष्टि चली जाती है। जड़ प्रपंच उसे

बाँधता नहीं। मरना-जीना समान हो जाता है। उसका चलना-फिरना, बोलना सब कर्म ईश्वर-शक्ति की प्रेरणा से होता है। उसका हर एक कर्म ईश्वरपूजा, प्रत्येक उच्चार मन्त्र, हर एक व्यवहार तन्त्र और जो आया सो द्रव्य हो जाता है। परमात्मा उसके कर्म का जिम्मेवार बन जाता है। चिदानंद की अनुभूति से वह शास्त्र-ग्रन्थ भूल जाता है अर्थात् शास्त्रज्ञान अब उसका अनुभव हो जाता है । इसी स्थिति की प्राप्ति का नाम है सिद्धि। यही साधना की निष्पत्तिरूप सिद्धि है जिसका शास्त्रों में निरामय चिदानंद ज्ञानरूप स्थिति कहकर वर्णन किया गया है। जब यह सिद्धि पराकाष्ठा पर पहुँचती है तब उस सिद्ध संत को ऐसा अनुभव होता है कि यह सब विश्वव्यापार परमात्मा की शक्ति से चल रहा है और वह शक्ति उससे भिन्न नहीं है। वह देखता है कि विविधतायुक्त जगत का आश्रय एक सर्वव्यापी परमात्मा है। सृष्टि उसी का ही विलास है। भेद में वह अभिन्नता का अनुभव करके, परमात्ममय बनके, सर्वत्र चिद्रूप परमात्मा का दर्शन करता है।

ऐसे सिद्धपुरुष कहते हैं कि उन्होंने ईश्वर को प्रत्यक्ष देखा है, उसके साथ ऐक्य प्राप्त किया है। जिज्ञासु साधकों को उपदेश देते हुए वे कहते हैं कि उनका अनुकरण करो, उनकी बात मानो, उनमें विश्वास रखो, तो वे वहीं पहुँचेंगे जहाँ वे गये हैं।

ऐसी ही एक सिद्ध योगिनी की यह लल्लवाणी है जिसका

परिचय हमारे पूज्य गुरुदेव स्वामी मुक्तानंद जी ने यहाँ पर करवाया है ।

इस वर्ष श्री जे. रुद्रप्पा ने बेंगलोर से भेंट रूप में कन्नड भाषा में स्वत: लिखित 'लल्ल योगेश्वरी' की प्रति भेजी थी । पूज्य गुरुदेव लल्लेश्वरी की सिद्धवाणी पढ़ते ही आनन्द में आ गये । उन्होंने उसे खुद पढ़ा और हिन्दी में उसका भावार्थ समझाकर अपने भक्तों को भी परमार्थानुभव का आनन्द करवाया । भारतीय तत्त्वज्ञान और आध्यात्मिकता में विशिष्ट स्थान प्राप्त शैवमत के प्रति पूज्य गुरुदेव का आदरभाव है ही । अत: योगिनी लल्लेश्वरी के दिव्य प्रेरणायुक्त वाक्यों को भक्तों के लिए हिन्दी भाषा में गद्य-बद्ध करने के लिए वे प्रेरित हुए । निश्चय होते ही कार्य तुरंत ही पूर्ण होना चाहिये, यह उनकी लाक्षणिकता है । अपने स्वभाव के अनुरूप वह कार्य उन्होंने तीन-चार दिन में ही सम्पन्न किया । पूज्य गुरुदेव को जितना समय लिखने में नहीं लगता, उतना हमें उसके प्रकाशन में लगता है । उनके कार्य के वेग के साथ उसी गति में चल पाना कठिन हो जाता है । 'लल्लेश्वरी' के पीछे 'मुक्तेश्वरी' आ ही रही है ।

लल्लेश्वरी के वाक्य-गीत अनेक हैं, ऐसा माना जाता है । अपने मूल रूप में वे कश्मीरी डोगरी भाषा में काव्यबद्ध हैं । श्री जे. रुद्रप्पा ने अपनी पुस्तक में ऐसे करीब ११२ वाक्यों का संग्रह दो भागों में किया है । एक को 'लल्लसूक्ति' और दूसरे

भाग को 'लल्लवाक्य' शीर्षक दिया है । लल्लसूक्ति में मूल कश्मीरी भाषा से भास्कराचार्य द्वारा किये हुए ६० श्लोक हैं, उसमें अन्त में चार प्रश्नोत्तरी भी हैं। और लल्लवाक्य में आनन्द कौल तथा ज्यार्ज गियरसन द्वारा किये गये अंग्रेजी अनुवाद में से श्री जे. रुद्रप्पा ने कन्नड भाषा में ६० वाक्य अनूदित किये हैं । वे कश्मीर शैवमत के विद्वान् हैं और उन्होंने कन्नड भाषा में शैवमत सम्बन्धी पुस्तक तथा लेख लिखे हैं । कश्मीर शैव सिद्धान्त के दुर्गम ग्रन्थ 'प्रत्यभिज्ञाहृदय' और 'शिवसूत्र' का उन्होंने सरल कन्नड भाषा में सम्पादन किया है। बेंगलोर विश्वविद्यालय उनका अंग्रेजी ग्रन्थ 'कश्मीर शैविज्म' प्रकाशित कर रहा है । उन्होंने लल्लसूक्ति और लल्लवाक्य पर विशद व्याख्या प्रस्तुत की है। उनकी 'लल्लयोगेश्वरी' के वाक्यों का पूज्य गुरुदेव ने हिन्दी अनुवाद किया जिसे प्रकाशित करने की स्वीकृति श्री जे. रुद्रप्पा ने दे दी है, इसके लिए हम उनका आभार मानते हैं ।

योगिनी लल्लेश्वरी ने स्वयं इन वाक्यों में पुस्तक नहीं लिखी । कश्मोर के लोगों में उनकी उक्तियाँ गीत रूप में प्रचलित हुईं और वहाँ के लोग उन्हें याद रखकर गाते रहते थे, इसलिए इस काव्य-संग्रह में विषय और समय का क्रम नहीं है। आत्मसम्बोधन द्वारा उपदेश, अनुभव और साधना के संकीर्ण वाक्य, समय-समय पर उद्गारित उक्तियाँ हैं। पूज्य गुरुदेव मुक्तानन्द स्वामी ने इन सब वाक्यों का अपनी लाक्षणिक भाषा में भावानुवाद किया है। सिद्ध की वाणी का सिद्ध ही पार

पाते हैं। उसमें विद्यमान हृदय के भावों की गंभीरता को, साधनाकाल की तपस्या को, आत्मविमर्श को, गुरुकृपा के महत्त्व को, शिवसायुज्यरूप अद्वैतानुभूति को—इन सब अनुभवों में से गुज़रकर चिद्रूपता के अन्तिम लक्ष्य को प्राप्त किए हुए महात्मा ही समझ सकते हैं। हमारी यह प्रार्थना है कि श्री गुरुदेव की वाणी के द्वारा हम इस सिद्धवाणी को जानें, जान कर अर्थ को प्राप्त करें, अर्थ के साथ आत्मसात् होवें, और जिस परम सत्य में लल्लेश्वरी प्रविष्ट हुई उसमें हम भी गुरु-कृपा से प्रवेश प्राप्त करें।

जय गुरुदेव

ज्ञान पंचमी, संवत् २०२५
२६ अक्तूबर १९६८

अम्मा

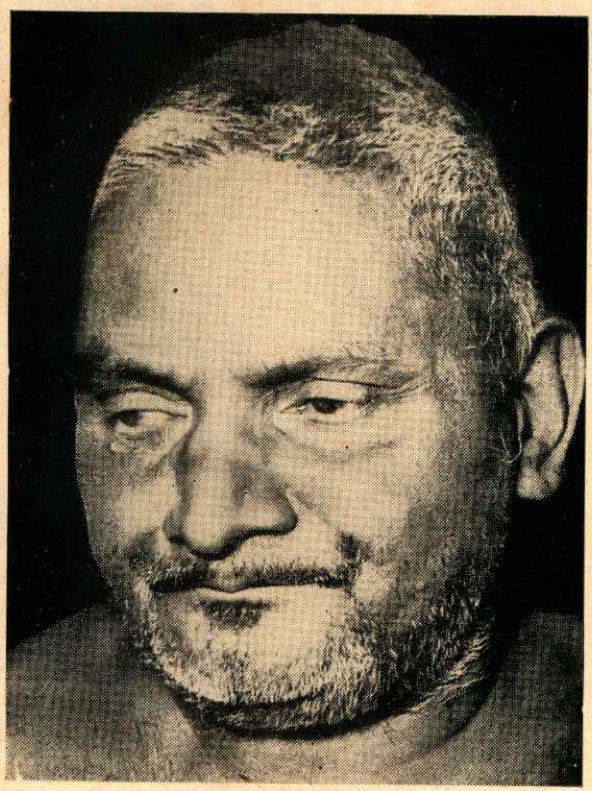

भगवान नित्यानन्द

स्वामी मुक्तानन्द परमहंस

१

लल्लसूक्ति

१

मैं किस दिशा से, कौन-सी राह से आयी हूँ ? किस रास्ते से कौन-सी दिशा को जा रही हूँ ? मुझे अपना रास्ता समझ में नहीं आता। फिर भी मैं तत्त्वज्ञान समझने की आशा लेकर धैर्य से, बुद्धि के निश्चय से, दृढ़तापूर्वक खड़ी हूँ।

२

हे गुरु, हे प्रभु, मैं आपको समझ नहीं पायी। देहाभिमान से जीवात्मा का स्वरूप भी मैं नहीं समझ सकी। 'तू' ही 'मैं' होकर रहता है, 'मैं' ही 'तू' होकर रहती हूँ, 'हम दोनों एक हैं'—ऐसा ज्ञान नहीं हुआ। इसलिए हम दोनों कौन हैं ऐसा प्रश्न होता है।

३

तुम शिव हो, केशव हो, ब्रह्म हो या आत्मा—संसार-रोग से ग्रस्त हुई मुझ अबला को रक्षण दो।

४

हे मेरे श्रीगुरु, मुझे अपनाओ। हे सिद्धगुरुनाथ, कृपा करके ज्ञान-विकास का साधनभूत उपदेश मुझे करो। अपनी अन्तर-शक्ति को मुझ में डाल दो। हे गुरु, आप ही मेरे मानस-मन्दिर में 'सोऽहम्' स्फूर्तिरूप में स्फुरने लग जाओ। नासिका द्वारा भीतर से बाहर निकलने वाले प्राणापान में एक गरम है, दूसरा ठंडा, इसका कारण समझाओ।

५

बुढ़ापा आया, शरीर कृश हो गया। जाने की तैयारी करनी चाहिये। जहाँ से चलकर आयी थी, वहीं जाकर समाना है। इस जगत में शाश्वत क्या है जिसमें मेरा चित्त लगे।

६

लल्ली, अपने पति शंकर की खोज करते-करते तू बहुत दूर आ गयी। उस विश्वव्यापी प्रभु को ढूँढ़ने जहाँ-तहाँ भटकी। आखिर इस शरीररूपी घर के अन्दर विद्यमान हृदयमन्दिर में ही उस परमात्मा के निवासस्थान को देखा।

७

उस विभु की खोज में तीर्थक्षेत्रों को गयी,

परमात्मा के नामस्मरण में, गुण-संकीर्तन में बहुत श्रम किया। श्रम करके भी परमात्मा को देख न पायी, इसलिए खिन्न हो गयी। आखिर मन में परमात्मस्वरूप का विमर्श करते-करते सिद्धकृपा से अपने में ही छुपकर रहनेवाले उसे पहचान लिया।

८

स्नान करते, हँसते रहते, करने योग्य भिन्न-भिन्न कर्मों को करते रहते वह तो हमारे सामने ही है। अपने हृदय में रहनेवाले उसे पहचान, उसका ध्यान कर। परमात्मा कहाँ है—इस तरह उसे जहाँ तहाँ मत ढूँढ़।

९

चाहे शक्तिपूजा करो, या शिवपूजा। चाहे जिस देवता को त्रिकाल पूजो, केवल अन्तरात्म-स्थिति से दूर न रहो। वे परमात्मा सर्वदेवमय हैं—ऐसा अपने को समझा दो।

१०

मोक्षापेक्षी यति-संन्यासी प्रयत्न से तीर्थ क्षेत्र में श्रम करते हैं, घर तज देते हैं। मोक्ष हृदय के अंदर रहता है, वह गुरुरूपी तीर्थ से प्राप्त है। आत्मतीर्थ सर्वदोषनाशकारी है।

११

अपनी बुद्धि को गोचर होनेवाले, आँखों को दिखने वाले और भिन्न-भिन्न होकर रहनेवाले इस विश्व के समस्त पदार्थ, तत्त्वज्ञान अथवा योगाभ्यास के परिपक्व ध्यानावस्था से चिद्रूपता अथवा परम-शून्य को प्राप्त होते हैं और केवल एक चिन्मय परमात्मा शेष रह जाता है। वह आत्मप्रशान्त निर्विकार स्थिति है तथा इस भेद-प्रपंच में साक्षी-भाव से उस आनन्दमय को विराजमान समझना ही यथार्थ उपदेश है। अपने आप प्रकाशित होनेवाली परमपूर्ण शुद्ध शक्ति ही संवित्, चिति आदि नाम से पुकारी जाती है। वह प्रशांत परम चिद्रूपता ही परमार्थरूप सत्य है। यह संवित् अभिन्न होने पर भी अपने से भिन्न होकर रहने वाले अनेकानेक पदार्थों को संकोच स्थिति में प्रमेय भाव से ग्रहण करती है तथा विकास स्थिति में इस प्रमेय भाव को छोड़कर निर्मल भाव से मेघरहित आकाश-सदृश स्फुरित होती है। 'चिद्गगन' इसका ही नाम है। ध्यानावस्था में संवित् से भिन्न अन्य कोई प्रमेय नहीं है, ऐसा योगीजन वर्णन करते हैं। शास्त्रों में अखण्ड रूप से विराजमान इस संवित् की स्थिति का वर्णन शून्य, शून्यातिशून्य, महाशून्य, निर्विकार, चित्स्वरूप परादशा आदि शब्दों में किया गया है। जो स्थिति चित्तवृत्ति से सम्बन्धरहित, क्लेशरूप-संस्काररहित

होती है तथा जिसमें भेदज्ञान के लिए अवकाश नहीं होता, वह स्थिति 'शून्य' कही जाती है। जैसे नमक पानी में मिलकर पानी बन जाता है, वैसे ही यहाँ सारी वृत्तियाँ चिति में लय हो जाती हैं।

१२

वाक्, मन आदि से जाना जानेवाला, ग्राह्य-ग्राहक भाव रूप अर्थात् दृष्टा-दृश्य रूप यह जगत जिसमें छुप जाता है, उस श्रेष्ठ तत्त्व का उपदेश ही परम श्रेष्ठ है। वाक् से, मन से जाना जाने वाला भिन्न-भिन्न रूप यह विश्व इस पार का 'कूल' है, इससे परे जो उस पार है—वह 'अकूल', अभिन्नरूप है। इन दोनों को अभेद करके एकाकाररूप की प्राप्ति करा देनेवाला उपदेश श्रेष्ठ है।

१३

जैसे पानी जमकर बर्फ बन जाता है और बर्फ सूर्य-किरण के स्पर्श से पिघलकर पुनः पानी हो जाता है—इसी प्रकार विश्व 'परिवर्तन' का ही नाम है, चेतना ही जड़रूप बन जाती है और ईश्वर के स्पर्श से पुनः चैतन्य हो जाती है।

१४

लल्ली, सब समझकर, शान्त होकर मूढ़ जैसी

रह। सब सुनकर बहरी और सब देखकर अन्धी बन जा। ज्ञानानुभवियों का कथन है कि ऐसी स्थिति को प्राप्त करना चाहिये।

१५

जीवात्मा माता के अनेक यातनाओं से भरे हुए उदर में प्रवेश करके अनेक प्रकार के मल से पूरित शरीर के साथ जन्म लेता है, तदनन्तर उसी मलिन शरीर से बढ़ता रहता है। वह शारीरिक भावना से प्रेरित होकर, पुनः सुख प्राप्त होगा इस समझ से दूसरे एक प्रतियोगी शरीर याने पत्नी को प्राप्त करता है। केवल शरीर से आगे न बढ़ने वाला वह मूढ़ात्मा आत्मस्वरूप को नहीं देख सकता। हे लल्ली, इस विषय को पूरा समझ ले।

१६

जैसे सूरज क्रम से, भेदरहित होकर सर्व स्थानों, सर्व मकानों में समान रूप से अपनी किरणों के साथ प्रवेश करता है; अथवा जिस प्रकार मेघ बिना किसी पक्षपात के सर्वत्र जल-सिंचन करता है; उसी प्रकार परमतत्त्व पक्षपातरहित होकर सर्वत्र पूर्णरूप से रहता है। वह सबका परम आश्रय है, लल्ली, तू इसे समझ ले।

१७

ओ लल्लेश्वरी, वह परमात्मशक्ति ही मातृ-रूप में स्तन्यपान के द्वारा पोषण करती है, पत्नीरूप से पतिव्रता गृहिणी बनती है। वही आखिर में मृत्यु-रूप को प्राप्त होती है। इसलिए पोषण, विलास, मरण इन तीनों के कारणरूप याने परस्पर विरुद्ध-धर्मरूप, अनन्तशक्ति के भंडारस्वरूप परमात्मा को जानना दुःसाध्य है; क्योंकि माता, रमणी, मृत्यु—ये उसी की अचिन्त्य क्रीड़ायें हैं।

१८

हाथों से वायु को और मृणाल-तन्तु से हाथी को रोकने की जिसमें शक्ति है, वह धीरात्मा शील और मान की भी रक्षा कर सकता है।

१९

मनुष्य के सभी व्यवहारों का साधन मन है। द्वेष से मन ही अग्नि जैसा जलता रहता है और बाद में वही अशान्ति और दुःख का कारण बन जाता है, मानापमान के स्मरण से दुःखी होता रहता है। तत्त्वतः विचार करें तो यह मन विकाररहित, शुद्ध ज्ञानरूप ही है : 'चितिरेव चित्तम्'।

२०

मन दौड़नेवाले घोड़े के समान क्षणभर में बहुत दूर जाता है। ज्ञानी प्राणापान की लगाम से विवेकपूर्वक उसे संयत रखता है।

२१

जिनका मन सम है, वे मुक्त हैं याने छुटकारा पाये हुए हैं, चाहे वे कुछ भी खायें, या कैसे भी शरीर सजायें। कर्ज़ देने वाले की अपेक्षा कर्ज़ न करनेवाला धनी है; क्योंकि वह ब्याज नहीं खाता।

२२

शीत-निवृत्ति के लिए जितनी ज़रूरत हो उतना कपड़ा और क्षुधा-निवृत्ति के लिए तीन अंश अन्न का उपयोग करो। मन को विवेक द्वारा जीव-परमात्मैक्य के चिन्तन में नियोजित करना चाहिये। तुम्हारा शरीर भोगादि विषय सेवन करने के लिए है ऐसा मत समझो—यह भ्रान्ति है।

२३

लोभ और शत्रुत्व इन दोनों को छोड़कर स्व-स्वरूप का अनुसंधान कर। जैसे महाशून्यरूप चिति सर्वथा अभिन्नरूप से रहती है, वैसे ही, हे लल्ली,

भेद-बुद्धि को छोड़कर अभिन्नरूप चिति में एकरूप होकर मिल जा ।

२४

जिस परमात्मा से यह विश्व प्रकट हुआ है, अथवा बाहर प्रसरण हुआ है उस परमात्मा की महामहिमा को 'ॐकार' रूप मन्त्र ने धारण किया है। जिस साधक का मन इस स्थूल-सूक्ष्म जगत का सदा विमर्श करता रहता है, उसको अन्य मन्त्र से क्या प्रयोजन ? त्रिमात्रा रूप ॐकार सर्वदेवमय, सर्वमन्त्रमय, सर्वतीर्थमय और विश्ववाचक होने से– 'ॐ' सत्य है, 'ॐ' पूर्ण है, 'ॐ' सब कुछ है ।

२५

जो प्राणायाम-क्रम से अपना मन स्थिर करता है, प्राणायाम-अभ्यास की परिपक्व अवस्था में जो क्षुधा-पिपासा की पीड़ा से पीड़ित नहीं होता, उसको संसार की बाधा नहीं होती, उसका जीवन सफल होता है ।

२६

जो स्वयंभू, सदा प्रकाशमान होकर रहने वाले, ब्रह्मरन्ध्र नामक देवमन्दिर में प्रकाशते हुए प्राणशक्ति को प्रेरित करते हैं, वे शंकर जब किसीके

अन्तर्यामी अथवा आत्मभूत हो गये, तब उस ज्ञानी को किसी की भी पूजा क्यों करनी चाहिये ? ध्यान-अनुसंधान के अनुकूल होकर रहने से परमात्मा शिर में है, ऐसा योगीजन कहते हैं। परमात्मा हृदय में है, यह उपनिषदों का कथन है। आयुर्वेद के अनुसार हृदय में आत्मा और मस्तक मे मन है। परमात्मा सर्वव्यापी, सर्वान्तर्यामी है, यह अध्यात्म-शास्त्र का सामान्य निर्णय है। दूध में मक्खन के सदृश, घर में दीपक की कान्ति के समान, तिल में तेल के सदृश, शरीर के अन्दर आत्मा निवास करती है—यह पुराणों का मत है। शास्त्रों के प्रमाणों और दृष्टान्तों के अनुसार तथा योगीजनों एवं तांत्रिकों की अनुभूति के अनुसार परमात्मशिव मस्तक में है और वहीं से वह प्राणशक्ति की प्रेरणानुसार सर्व व्यवहार को चलाता है। इन सब कथनों-प्रमाणों में कोई न्यूनता अथवा हानि नहीं है। इन विषयों को स्पष्ट करके समझने से, हृदयंगम करने से, 'मैं शिव हूँ' यह अंतर-भावना उदित होती है, तदनन्तर अंतर के शिव प्रकट होते हैं। प्रकट शिव के साक्षात्कार के बाद—देव और भक्त की भेद-सीमा उल्लंघन करने के बाद—वह ज्ञानी किसी की पूजा क्यों करेगा ? वे प्रकट शिव ही उसके पूज्य हैं।

२७

हृदय से उठनेवाला अनाहत शब्द ॐ मन्त्र के साथ शिव के निवास-स्थान ब्रह्मरन्ध्र के अन्दर प्रवेश कर सकता है।

२८

फूल तोड़कर लानेवाला कौन है? उसकी पत्नी कौन है? किस फूल से किस देव की पूजा करनी चाहिये? कौनसा नैवेद्य अर्पण करना चाहिये? कौनसा मन्त्र बोलना चाहिये? ये सब प्रश्न अभेदानुसंधानी, परा-स्थिति को प्राप्त हुए व्यक्ति के लिए आश्चर्यकारी नहीं हैं क्या?

२९

जो मौन मन्त्र से शिव का ध्यान कर लेता है, वह शिव का साक्षात्कार कर लेता है। मौन मन्त्र को अजपा मन्त्र भी कहते हैं। जिस मन्त्र का उच्चारण करने के लिए भाषा नहीं, वह मौन मन्त्र है। मौन मन्त्र का साधक श्वास-प्रश्वास में मौन मन्त्र की साधना करता है। इसे 'हंस' संज्ञा भी दी गयी है। 'सोऽहम्' को ही 'हंस' कहते हैं। जीवात्मा से भिन्न न होकर सहस्रार में रहनेवाले परमशिव को 'हंस' कहते हैं। इस पद को परमहंस भी पुकारते हैं तथा अजपा भी कहते हैं। वस्तुतः मानव के अन्दर प्राणा-

पान रात-दिन 'हंस-जप' करता रहता है । ज्ञानी शिव-प्रसाद के बल से इसे जान लेता है ।

३०

मैं अन्तःकरण को परिशुद्ध करनेवाले, पवित्र रखने वाले तीन सरोवरों, तीन करणों का सदा स्मरण-चिन्तन करती हूँ । अनन्त चिदाकार को एक बार अवश्य याद करती हूँ, इसी प्रकार इस विश्व की अद्भुत रीति का भी परिशीलन करती हूँ और मुख्य रूप शुद्ध चिन्मात्र स्थिति की सप्तभूमियों का भी अनुसंधान करती हूँ ।

३१

लल्लेश्वरी, तू जो भी काम करती है, वे सर्व कर्म शिवपूजा हैं । तू जो भी उच्चारण करती है वे सब मन्त्र हैं । जिस समय जो कर्म, स्वभाव के अनुसार प्राप्त होता है, वह सब द्रव्य है । जिस प्रकार से तेरा प्रपंच-व्यवहार चलता है, वह सब तन्त्र है ।

३२

हे प्रभु 'तू' ही 'मैं' होकर रहता है । तेरी ही सब शक्ति मुझमें कार्य कर रही है । तुम चलाते हो, तब मैं चलती हूँ—बस यही तुममें और हममें रहनेवाला भेद है । बाकी जो मैं हूँ, वही तू है ।

३३

पूजा करने की वस्तु और पूजा करनेवाला—ये दोनों पूजा के लिए तेरे द्वारा निर्मित हैं। दृश्य-दृष्टा, जगत-जगदीश तू ही है। प्राणशक्ति के व्यापार को चित्त में लय करने से सब वृत्तियों का जो पूर्ण ऐक्य है, वही साक्षात्कार है।

३४

'मैं' और 'यह' सुख और दुःख, एकाकार होकर अभिन्नरूप से जिसकी अनुभूति में आते हैं, उस अद्वैत भावनायुक्त साधक को अमरेश्वर का साक्षात्कार होता है।

३५

मानस-आरसी स्वच्छ होते ही मुझे आत्मीयों में मूलभूत तत्त्व का ज्ञान हो गया, तदनन्तर स्वजन-परजन सब एक हैं यह ज्ञान हो गया—इस ज्ञान से मैंने समझ लिया कि वे परमात्मा मुझसे भिन्न नहीं हैं। इस अभेद-ज्ञान से 'मैं'–'तुम' नामक बुद्धि नष्ट हो गयी और मैं यह भी समझ गयी कि यह बाह्य प्रपंच भी परमात्मा से भिन्न नहीं है।

३६

इस तरह की अभेद भावना से युक्त पुरुष

निद्रित होने पर भी जागते रहने वाला होता है। लेकिन भेद भावना युक्त पुरुष जागते रहने पर भी सोता रहता है। इस बात को इस प्रकार समझना चाहिये : जैसे कुछ लोग प्रपंच में रहने पर भी शिवानुभूति होने के कारण सदा पवित्र होते हैं और कुछ लोग नित्यप्रति गंगा-स्नान करते रहने पर भी सदा मलिन रहते हैं।

३७

नाभि से लेकर ब्रह्माण्ड प्रदेश तक व्याप्त ॐकार मन्त्र का जब अनुसंधान किया जाता है, तब जिसका मन इस प्रणव के विमर्श को लक्ष्य बनाकर रहता है, उसे अन्य मन्त्र से क्या प्रयोजन है ?

३८

क्षुद्र साधारण मैंने इस संसार को प्राप्त किया, फिर भी सहज पूर्ण ज्ञान विकास मुझे प्राप्त हो गया। इस विकास से मैं किसी दृष्टि से भी मरने वाली नहीं। वस्तुतः मेरे अनुभव से कोई मरता ही नहीं। मरना-जीना मेरे लिए दोनों समान हैं।

३९

जिस अखण्ड चिद्रूप के विलास में जन्म-मरण-रूप विलास विलसित हो रहा है, उसे सामान्यजन

विपरीत रूप से समझते हैं। जन्म-मरण चिति शक्ति का विलास मात्र है, लल्ली, इस मार्मिक दृष्टि से देखने पर जीवन-मरण दोनों एक समान हैं, ऐसी प्रतीति होती है।

४०

अनन्तरूप चैतन्यपूर्ण रसमय तू मेरे शरीर में रहता है। तेरी पूजा करनेवाली मुझको मरण हो अथवा जन्म हो, अथवा अन्य कोई अवस्था ही क्यों न हो, कोई फर्क नहीं है, कुछ विशेष नहीं है।

४१

आकाश, भूमि, वायु, अग्नि, जल, रात्रि-दिन सब कुछ तू स्वयं ही हो गया है। फूल, जल आदि पूजा-द्रव्य सब तेरे परिणाम रूप हैं, इसलिए तेरी पूजा करने के लिए मुझे तुझसे भिन्न और दूसरा कोई द्रव्य ही नहीं मिलता—मैं किससे तेरी पूजा करूँ ?

४२

पूज्य, पूजक और पूजोपकरण—ये तीनों एक ही हैं ऐसा शिवसिद्धांत है। सर्व शिवमय है, यह अभेद भावना ही अनुभव है।

४३

इस शरीर में अन्नमयादि आवरण से पार होकर स्वस्वरूपानुसंधान द्वारा आत्मसाक्षात्कार प्राप्त होने पर, जीवात्मा में परमात्मा को देखकर मैंने इस प्रपंच में लल्ली नाम से प्रसिद्धि पायी ।

४४

प्रशान्त शिवध्यान-अवस्था में 'मैं और तू' का भेद नहीं है । यहाँ किसी प्रकार की चर्चा का भी प्रयोजन नहीं है, किसी वंश-विशेष की प्रतीति भी यहाँ नहीं, जाति-कुल-धर्म-सम्प्रदाय का पता भी नहीं लगता । स्व-स्वरूप अखण्ड ब्रह्म में लीन होकर वह अपने-आपको भूल जाता है ।

४५

प्रशान्त ध्यानावस्था में 'मैं-मेरा' नहीं रहता, फिर 'तू-तेरा' कहाँ से रहेगा ? ध्यान करने योग्य ध्येय वस्तु भी नहीं रहती, अपने को ही आप भूल जाता है । 'सर्व शिवमय है' ऐसी एक ही प्रतीति रहती है । सत्पुरुष एक बार चित्स्वरूप देखकर वहीं लीन हो जाते हैं ।

४६

प्राणवायु की गति को रोककर, ज्ञान-दीप को

प्रज्वलित करके, अपने शरीर में ही उस चिद्रूप विकाररहित शिव को मैंने देखा ।

४७

जीवन का प्रमुख आधार होकर रहनेवाली प्राणशक्ति ही क्षुधा-पिपासादि शारीरिक आकांक्षाओं, संतोष-उद्वेग आदि मानसिक विकारों के उदय-अस्त का कारण होती है ।

४८

निश्चित स्थान में प्राणवायु की गति को रोकने से मन की चंचलता स्थिर हो जाती है । 'चले वाते चलं चित्तं निश्चले निश्चलं भवेत्' उक्ति के अनुसार प्राण सम-स्थिर होने पर मध्य-नाड़ी विकसित होकर स्वस्वरूप आविर्भावमय ज्ञान-दीप प्रकाशित होता है । ज्ञानदीप का प्रकाश, स्वस्वरूप का साक्षात्कार, आत्मसाक्षात्कार—ये सब पर्यायवाची शब्द हैं ।

४९

मध्यनाड़ी सुषुम्नागत कुण्डलिनी महाशक्ति है जिसके जागृत होने से मानव सहज में ही शिवपद प्राप्त करता है ।

५०

पूजा में हस्तादि से की जानेवाली क्रियाएँ मन्त्र में लय होती हैं। नाममूलक जो मन्त्र है, वह मन में लय होता है। मन के लय हो जाने से सब कुछ पिघल जाता है, तदनन्तर ग्राह्यरूप दृश्य-प्रपंच और ग्राहक आत्मा चित्स्वरूप होकर रहते हैं।

५१

मैंने काम, क्रोध आदि छह अरिवर्गरूपी अरण्य को काटकर ज्ञानमय अमृत को प्राप्त किया। प्राणवायु की गति का निरोध करके, चित्त के स्वभाव को जीतकर, भक्ति के बल से मन को विशुद्ध करके शिव-साक्षात्कार प्राप्त किया।

५२

ध्यान-धारणा के बल से सर्व सिद्धि के फलस्वरूप समाधिलाभ प्राप्त होता है। यही बोधमय चिद्रूप शिव-साक्षात्कार है।

५३

काम-क्रोध-अहंकार आदि हित-शत्रुओं को प्रयत्न से दूर किया। उस प्रयत्न से ही सर्व पदार्थों के स्वरूप को भभूत जैसा समझकर अभिमान त्याग

दिया । इसके प्रभाव से ही ईश्वरानुग्रह द्वारा साक्षात्कार कर लिया ।

५४

शरीरादि पंच-कोष के आवरण के कारण आपसे न मिलकर दुःख पाती रही । हे महेश्वर, आपको पाने में आड़ बननेवाले सभी उपद्रवों को हटाकर आपके चिन्मय साक्षात्कार से शान्ति प्राप्त की ।

५५

स्वस्वरूप के साक्षात्कार में ही लग गयी थी, उससे श्रम भी उठाना पड़ा । परमात्म-ज्ञान की एकान्त स्थिति में प्राणापान को रोकने के प्रयत्न में और भी श्रम किया, तदनन्तर श्रीगुरुकृपा-समुद्र में पूर्ण रूप से स्नान किया और मैं तब शुद्ध होकर उसमें ही तन्मय हो गयी ।

५६

जिस स्थिति का शब्दों से उच्चारण नहीं किया जा सकता, जिसका अनुभव केवल इच्छाशक्ति से होता है, उस स्थिति को जिसने प्राप्त किया, वह सच्चा अनुभवी है ।

५७

शास्त्र-सम्पन्न पंडितों की अपेक्षा अनुभवियों का विशेष महत्वपूर्ण स्थान है। जो हृदयगोचर है, अनुभव-वेद्य है, वही सत्य है, ऐसा अनुभवियों का मत है। लल्ली, अपने निजरूप का ज्ञान ही अनुभव है।

५८

लल्ली, अनुभवी जन विश्व की विविधता को एकरूप में देखते हैं। वे कहते हैं प्रपंच सब एक समान है।

५९

शिवानुभूति को प्राप्त किये हुए प्रज्ञजन सिद्धावस्था में रहने पर भी प्रापंचिक एवं साम्प्रदायिक रीति-नीति को भेदाभेद से आचरण में लाने के विधानों को सहज समझाते हैं।

६०

हे लल्लेश्वरी, ब्रह्मज्ञान से बढ़कर प्रकाश नहीं, परमात्मा के साक्षात्काररूप प्रयत्न के समान तीर्थयात्रा नहीं, परमात्मा की दया से बढ़कर आत्म-बन्धु नहीं, परमात्मा में भय-भक्ति-श्रद्धापूर्वक जीवन-निर्वाह करने में जो सुख होता है उससे बढ़कर और

सुख नहीं। लल्ली, श्रीगुरु-ध्यान से बढ़कर योग नहीं।

६१

लल्ली, शिव भज, शिव ध्या, शिव पूज। तेरे आगे-पीछे, पूर्व-पश्चिम शिव है। ऊपर-नीचे, चारों तरफ शिव है। शिव समुद्र की तरंग भी, फेन भी, बुदबुद भी शिव है। लल्ली, तू पूर्ण में, पूर्ण तेरे में है। 'ओइम्' शिव।

इति

२

लल्लवाक्य

१

मैं सदा 'प्रणव' का अनुसंधान करती रहती हूँ। अब भी उसीको पढ़ती हूँ, उसीका अभ्यास करती हूँ। 'सोऽहम्' मन्त्र के 'सो' और 'अहम्' इन दोनों में से 'अहम्' अर्थात् अभिमान को छोड़ दिया, तब मैंने विकास पाया, मैं पूर्ण हुई। मेरी व्याप्ति 'शिव' में हो गयी, मैं केवल शिव हो गयी।

२

हज़ारों वाक्यों और बातों से क्या प्रयोजन ? मेरी तो एक ही बात है : वही 'प्रणव'। मेरे जो पाँव अनेक रास्तों में चलते थे, अब एक रास्ते में चल रहे हैं। और जब से मेरे कदम एक राह के राहगीर हुए तब से मैंने अपने स्थान को शीघ्रता से प्राप्त किया। मेरे इन वचनों का सब क्यों अनुकरण नहीं करते ?

३

मेरा पढ़ना, अध्ययन करना, वही एक है, वही

एक शब्द : 'ॐ' अथवा 'सोऽहम्', वे भगवान शिव। उन्हें मैंने केवल उस एक अक्षर द्वारा पकड़ लिया, उसीसे अपने को तपाकर शुद्ध किया, सर्व मल भस्म हुआ, शुद्ध सुवर्ण रह गया।

४

जगत का यह जन समुदाय क्यों अन्य-अन्य मार्ग में श्रम कर रहा है? क्यों सत्य बात भी लोग नहीं सुनते? लल्ली तो सहज एक पद में ही लीन हो गयी। वही एक 'प्रणव'। हज़ारों पदों और मन्त्रों का क्या प्रयोजन है?

५

आदि, मध्य और अन्त में एक ही पद 'ॐ' है। मैं उसका ही ध्यान करके उसमें समा गयी। मैं 'ॐकार' को ही साधकर नयी बन गयी। मैंने नाशवंत शरीर को छोड़कर देह में ही नाशरहित परमात्मा को देखा।

६

लल्ली पगली, तूने मूलस्वरूप को देखा, वहाँ अपने पाँवों को स्थिर किया, मज़बूत करके रखा; अब तू कैसे गिरेगी?

७

जन्म और मरण का सम्बन्ध शिव से नहीं, उदय और अस्त सूरज का नहीं। लल्ली, तू पहले भी थी, अब भी है, आगे भी रहेगी। लल्ली, तू शिव है। शिव, तू लल्ली है।

८

लल्ली, तुझे जन्म नहीं, मरण नहीं। तुझे कष्ट या सुख में अभिमान नहीं। तू काम-क्रोध आदि से बहुत पीछे है, शब्दवादियों से आगे है। परमात्मा की सर्वव्यापकता की अनुभूति महान आश्चर्यकारी है।

९

माता-पिता कौन ? बन्धु-बान्धव कौन ? मित्र कौन ? यह समझकर भी इनकी अभिमानाग्नि में जलती है क्या ? इनका अभिमान करती है क्या ?

१०

लल्ली, तू विधि-नियम के अनुसार आयी, विधि-नियम के अनुसार जायेगी। तेरा लक्ष्य केवल परमतत्त्व ही है, जो सभी का मित्र है। अज्ञानी पामर जन तुझे कुछ भी बोलें या तेरे साथ कुछ भी करें।

११

झूठा कथन करना, दम्भयुक्त वचन बोलना छोड़ दिया। यह बात अपने मन को भी सिखायी, जगत के जन को भी सिखायी-समझायी। मैंने जनता में ही उस परमात्मा को देख लिया। मैंने प्रपंच-व्यवहार में परमार्थ-दृष्टि पा ली, अब उसमें द्वेष कहाँ से हो ?

१२

मैंने ग्रंथ पढ़कर क्या समझा ? ऐसे ही चल-कर जीवन बिताया। जो पढ़कर नहीं समझा था, उसे अब समझ लिया। शृगाल के चतुर उपाय से सिंह को जीत लिया। मन के मोह, आशा, आकांक्षा पर विजय प्राप्त की। मैंने जो समझा, उसका ही आचरण किया, दूसरे से भी वही करने को कहा। यही मेरी पूर्ण विजय है।

१३

जब मेरी नादान लज्जा गल गयी, जब मैंने निन्दा-स्तुति को एकासन पर बिठाकर देखा, जब मेरा मान-अपमान, योगिनी का स्मृति-बोध जलकर भस्म हो गया, जब कान अच्छा-बुरा विषय नहीं सुनने लगे, आँखों ने उन विषयों को देखना बन्द कर दिया, तब परमेश्वर का प्रसादरूप स्फुरण मेरे

मन में उदय हो गया। तब मेरी ज्ञान-ज्योति प्रकाशित होने लगी, अन्तर-ज्योति जलने लगी, और मन ने पूर्ण शान्ति को प्राप्त किया।

१४

जिन्होंने मुझे अपमानित किया, वे सब चले गये। अपकीर्ति करनेवाले भी चले गये। मैंने शिव-भाव की सिद्धि को प्राप्त किया, अब इसके बाद मेरे साथ क्या रहेगा! संतोष या संताप? इन दोनों का मुझ पर कोई परिणाम नहीं।

१५

अशरीरा लल्ली, तू शरीर का शृंगार करती है क्या? अच्छे मिष्टान्न से पोषण करती है क्या? अरे पगली, निर्मल मन से अन्तर के परशिव को खोज। अपना आलस्य, अज्ञान नष्ट होने दे। तब तू समझेगी कि तेरा शरीर उस परम पिता सर्वात्मा परमेश्वर का एक अंश है। तब अन्तर-सौन्दर्य का प्रकाश प्रकाशित होगा।

१६

मैंने बेल के समान दिन बिताये, क्षेत्रों में दिन बिताये, आखिर परशिव की दया से दिव्य प्रकाश को देख लिया।

१७

जन्म लेकर मैं अति आशा की दासी नहीं बनी। मैंने आशा और सुख-चैन में जीवन को नहीं बेचा। सरल, सादा जीवन बिताया। दरिद्रता और दुःख की अनुभूति में जीवन बिताने पर भी परमात्मा का ध्यान नहीं छोड़ा।

१८

कर्मफल की अनुभूति भोग मे नष्ट होते ही निर्मल आत्म-स्वरूप प्रकट हो गया। अन्तरंग शुद्ध हो गया। तदनन्तर मैं समझ गयी कि अन्तर-बाह्य के सारे व्यवहार शिव-संकल्प से ही होते हैं।

१९

साधारण जन-समुदाय मुझे मूक, अन्धी, बहरी, आलसी, प्रमादी समझेगा। जो दिखने में नहीं आता, उसे देखा; जो सुनने में नहीं आता, उसे सुना; जिसका उच्चारण नहीं होता, उसे बोली। मैंने शिव में मिलकर शिवानुभूति को प्राप्त किया, अब जिज्ञासा किस बात की? शिव में मिलकर शिव बनी, अब लल्ली कहाँ?

२०

सर्वत्र फैली हुई सूरज की किरनें पत्थर और

मिट्टी में क्यों नहीं प्रतिबिम्बित होतीं ? जिस प्रकार स्वच्छ दर्पण में मुखबिम्ब प्रकाशित होता है, उसी प्रकार निष्पाप मन में शिव का प्रकाश प्रकाशित होता है ।

२१

बहुत काल से रोती थी, चिल्लाती थी, आगे-पीछे, ऊपर-नीचे देखती थी । जब मुझे शिव का ज्ञान हुआ, शिव से मैं भिन्न नहीं हूँ यह प्रतीत हुआ, तब मेरा हृदय भर गया, मेरी जिज्ञासा पूर्ण हो गयी, मेरी समझ पूरी हो गयी । मेरा ताप-संताप नष्ट हो गया ।

२२

मैंने अपने हृदय के मल को शिव-नाम की अग्नि में जलाकर भस्म किया । तब से मैं सुख से जी रही हूँ । अब मरनेवाली हूँ ऐसा कैसे जानूं ? शिव-प्रेम से हृदय को धो डाला है, दुराशा नष्ट हो गयी है, शान्ति प्राप्त हो गयी है ।

२३

जिसे मैंने आँखों में देखा है, कानों में सुना है, जो मेरे सामने प्रत्यक्ष हुआ है, उसी के कारण

मैं जी रही हूँ, यही मेरी समझ है। मैं मरी नहीं, मरूँगी भी नहीं।

२४

मैंने अंतःकरण को धो डाला, आशा से छुटकारा पाया, हृदय निर्मल हो गया, शान्ति-लाभ किया।

२५

मैं जहाँ भी गयी, वहाँ उसको देखा। सब वही है, विश्व भी वही है; उससे अलग मैं कहाँ, उसको छोड़कर मैं कहाँ ?

२६

मैंने मन, वचन, कर्म से शिव की ओर प्रयाण किया, उसके बदले मैंने सत्य का घण्टानाद सुना, निश्चल ध्यान से परम ज्योति को देखा।

२७

पढ़ना आसान है, सुलभ है, जो पढ़ा उसके अनुसार चलना कठिन है। तत्त्व-साक्षात्कार अत्यन्त सूक्ष्म है और अत्यन्त दुस्तर तथा कष्टप्रद है। चिदानन्द-अनुभूति से मैं ग्रन्थों को भूल गयी।

२८

जिनमें आत्म-भावना की कमी है, वे पिंजरे के तोते की तरह राम-राम उच्चारण करते हैं और उसी तरह ग्रन्थ भी पढ़ते हैं। मैं गीता पढ़ती हूँ, अब भी पढ़ती हूँ, परन्तु विषय-ज्ञान समझना मात्र पर्याप्त नहीं है, अन्तरानुभूति होनी चाहिये।

२९

जीवनरूपी पानी से कल्मष निकल जाने पर जीवन दर्पण की तरह स्वच्छ और हिम की भाँति प्रकाशित हो जायेगा। हे प्रभु, आपके संकल्प से जन्म-मरण, श्रवण-दर्शन, सामर्थ्य-असामर्थ्य की प्राप्ति होती है। हे परशिव, आप कब मुझमें सत्य को प्रकाशित करेंगे यह विचार अब पूरा हो गया है। मैं शिव से भिन्न नहीं हूँ।

३०

मैं एक रास्ते से आयी, जिस रास्ते पर जाना था, उस पर नहीं गयी। अब नदी पार करना है। नदी पार करानेवाले को नाव के लिए पैसे चाहियें। मैंने एक कौड़ी भी नहीं कमायी। पार होने का उपाय कैसे हो ?

३१

हज़ारों लोग मेरे बारे में अनेक प्रकार से गालियाँ बकते हैं, बकने दो। मैं उदासीन भाव से रहने के कारण मन मलिन नहीं करती। जैसे दर्पण धूलि से मलिन नहीं होता, उसी प्रकार शिवानुभूति से युक्त मेरा मन जनापवाद से उद्वेग नहीं पाता, मलिन नहीं होता।

३२

मैं परमात्मा को देखने बहुत दूर गयी, परन्तु वापस फिरने पर उसे अपने में ही देखा। लल्ली, भिखारी जैसी क्यों फिरती? तू भी प्रयत्न कर, तुझे हृदय में आनन्द-आविष्कार सहित उसके दर्शन होंगे।

३३

मैंने उसको खोजा, पराकाष्ठा का साहस किया, सामने देखा, अनुसंधान किया, मौन रहकर ध्यान किया, आखिर अपने में उसको पाया।

३४

बाल्य, यौवन, वार्धक्य और मरण नदी के प्रवाह की भाँति चलते रहते हैं। हम अज्ञानी की तरह इनकी क्यों अनुभूति करें? मित्रो, अन्तर में

रहनेवाले शिव को खोजकर देखो। मेरी इस बात को मानो, विश्वास करो।

३५

पानी हाथ में धारण कर सकते हो क्या ? वायु को हाथ से रोक सकते हो क्या ? नहीं। लेकिन जिसने पंचेन्द्रियों का निग्रह कर लिया, वह अज्ञानान्धकार में सूरज को देख सकता है।

३६

शिव सर्वव्यापी है। एक व्यक्ति से दूसरे व्यक्ति में भेद मत करो। अरे पंडितो, इसी तत्त्व को मन में धारण करो। यह साम्यभाव ही विकास का मार्ग है।

३७

शिव-शिव कहने से शिव प्रसन्न नहीं होता। घी-घी कहने से शरीर पुष्ट होगा क्या ? घी खाने से शरीर का बल बढ़ेगा। शिवानुभूति परम शान्ति है।

३८

सर्वव्यापक परशिव तुझमें है, उसका भजन कर। उसका साक्षात्कार होने से तेरी भावना के अनुरूप तेरा जीवन बनेगा।

३९

गृहस्थ हो या संन्यासी, तेरे हित का जो रास्ता है, उसीका तू अनुसरण कर। जब आशा-तृष्णा तुझे नहीं सताये तब समझना कि तूने समझा है। तब तेरा जीवन निर्मल बनेगा।

४०

तुम होश में हो क्या ? पाँव आगे रखो, वेग से चलो, अपनी यात्रा पूरी करो। अपनी समझ को जागरूकता से आगे बढ़ने दो, इसकी बहुत ज़रूरत है। अपने मित्र को ढूँढ़ो—प्रकाश दिखेगा। अपने पाँव को सुदृढ़ होने दो, पंख फूटने दो।

४१

इन्द्रिय-निग्रह कड़ुआ होते हुए भी मीठा है। विषयाराम मीठे होते हुए भी विष हैं—यह बुद्धिमान पुरुष जान सकता है। अपने लक्ष्य का अनुसरण करनेवाला लक्ष्य-स्थान को प्राप्त करता है।

४२

दुःख में तपकर जब मैल जल जायेगा, तब तू आरसी से भी अधिक प्रकाशमान और मोती से भी अधिक शुभ्र होकर चमकेगा।

४३

सत्य की खोज कठिनतर है, सूक्ष्मतम है। लल्ली शास्त्र भूल गयी—तीव्र ध्यानाभ्यास से उसे आनन्द प्राप्त हो गया। पढ़कर उदित होने वाले और समझ के परे रहनेवाले सत्य को मैंने देखा।

४४

तू क्षुद्र पिपासा की तृप्ति की आशा मत कर। तू कष्टग्रस्त होने पर भी निरुत्साही मत हो, उपवास से श्रमित न हो। तू उपकारजीवी होकर जी—यही तेरा कर्त्तव्य है।

४५

तू क्यों अंधे की तरह हाथों से इधर-उधर टटोलता है? तू बुद्धिमान है तो अन्तर में प्रवेश कर, वहीं देख शिव है—तू उसे और कहीं भी मत ढूँढ़। मित्र, मेरी बात पर विश्वास रख। इस लोक में प्राप्त होनेवाली अनेकानेक परिस्थितियों में भी हितेच्छा रखना पूर्ण शुद्ध जीवों का आदर्श है।

४६

रुई अपने उद्‌गम में बहुत स्वच्छ होती है। फूल के समान फूल जाती है। फिर कपास में से

रुई को छुड़ाकर, लकड़ी से मार-मार कर, ताँत से धुनकर उसे साफ कर लिया जाता है और चरखे में सूत कातकर, उसमें अनेक रंग लगाकर, ताने-बाने के साथ करघे पर वस्त्र बुन लेते हैं, फिर उसे धोबी से स्वच्छ धुलवाकर, दर्जी से कटवाकर अपने पसन्द की उपयोगी पोशाक बना लेते हैं। जिस प्रकार कपास नाना प्रकार के परिश्रम को प्राप्त होकर सुन्दर परिधान हो गयी, ऐसे ही लल्लेश्वरी नाना कष्ट सह-सह कर ज्ञानी बन गयी।

४७

स्थूलाकार-सूक्ष्माकार रूप में भासने वाला यह सारा विश्व लल्ली हो गया। वह पृथ्वी, स्वर्ग, प्रकाश, अँधेरा, वायु आदि पंचमहाभूत आप ही बन गयी। लल्ली, शिव को अर्पण किये जाने वाले फूल भी परशिव ही हैं। तू यज्ञ की हवि भी है, अभिषेक का जल और सर्व उपद्रवों को नष्ट करनेवाली दिव्य औषधि भी तू ही है। तुझको अब क्या होना है? मैं कहाँ से आयी, कहाँ जानेवाली हूँ, किस रास्ते पर जा रही हूँ? मेरा परमाश्रय तो शिव है, मैं केवल उच्छ्वास मात्र हूँ।

४८

आशा, काम, अहंकार इन तीनों चोरों को

नाश कर दे। दूसरे से सेवा-चाकरी लेने के बदले सेवा करना सीख। ये चोर थोड़े काल रहनेवाले हैं, भक्ति शाश्वत है। यहाँ मानव का अर्जित किया कुछ भी नहीं है। उस परमात्मा को सेवा ही मानव की शक्ति है। आत्मज्ञान प्राप्त कर, वही ज्ञान-ज्योति का उद्‌गम है।

४९

कष्ट सहन करना—चक्की में पीसे जाना जैसा है, दिन में रात होने के समान है—मेघ में बिजली की चकाचौंध और तड़तड़ाहत जैसा है। आनेवाला चुकता नहीं, आ ही जाता है। परमशिव में समाधान चित्त रखकर साहस से उसका सामना कर।

५०

नदी सतत प्रवाहित रहने में कष्ट नहीं मानती, सूर्य निरन्तर चलते रहने में श्रमित होता है क्या? पृथ्वी सूर्य की परिक्रमा लगाने से और चन्द्रमा वृद्धि-क्षय से थकता है क्या? दुष्ट को निन्दा से श्रम होता है क्या? यह तो उनके जीवन की प्रकृति है, स्वभाव है।

५१

देहाभिमान-त्यागी, मनुष्य नहीं महात्मा है। देह कृश होने से उसे बाहर के लोग पुष्ट कर सकते हैं क्या ? केवल शरीर-पोषण करने से तू कहीं भी नहीं पहुँच पायेगा, शरीर सुखाने से भी तू कुछ नहीं पायेगा। मिताहार कर—तू जीता रहेगा, मरेगा नहीं। परमात्मा का सदा स्मरण कर, अन्तर की खिड़की खुल जायेगी।

५२

मैं सीधी आयी, सीधी ही चली जाऊँगी। वक्रदृष्टि रखनेवाले जन मेरा क्या कर सकते हैं ? मैं पहले से ही उस परमात्मा को जानती हूँ। पहले के परिचय से ही मैं उसके प्रेम की पात्री बनी। मेरा कौन भला कुछ बिगाड़ सकता है ?

५३

तेरा मुखमंडल कितना मनोहर है, पर तेरा हृदय पत्थर जैसा। पढ़ते-पढ़ते तेरी ज़बान और लिखते-लिखते तेरी अंगुलियाँ घिस गयीं, पर अन्दर जमकर बैठे हुए द्वेष ने तुझे नहीं छोड़ा।

५४

पगली, इस शरीर का नामकरण करना हो

तो निरामय परमेश्वर का नामकरण कर। उसी नाम का जाप-सुमिरन कर। 'सोऽहम्' 'अहं सः' 'वह मैं हूँ' और 'मैं वह परमात्मा है'—ऐसी घोषणा करने को तैयार हो जा। 'मैं' छूट जायेगा, 'शिव' रह जायेगा।

५५

मुझे उसे, कैसे भी हो, देखना ही है। हम दोनों के बीच महासमुद्र की आड़ है। मेरा मन दुर्बल है, मन की नाव करके कैसे जाना हो? इसलिए एक मित्र को ढूँढ़ना चाहिये। प्राणापान को मित्र बना लो। प्राणापान के साथ पूरी-पूरी मैत्री कर लो। उनके साथ 'सोऽहम्' के प्रयोग की युक्ति से उस पार जाया जा सकता है।

५६

मानव के पास शिवजी को देने योग्य क्या है? आत्मज्ञान से जो प्राप्त होगा, वही परशिव के नैवेद्य के लायक होता है।

इति

श्री लल्लेश्वरी सिद्धनाथेश्वर गुरु की शिष्या थी। लल्लेश्वरी ने अपने गुरु सिद्धनाथ से चार प्रश्न पूछे :

प्रश्न : निद्रा में गहरा डूबा हुआ कौन, और जागने वाला कौन ?

उत्तर : बहिर्मुख मन प्रपंच व्यवहार में डूब जाना ही निद्रा है और मन का अन्तर्मुख होकर ज्ञान में, अपनी आत्मस्थिति में मग्न होकर एकीभूत, एकाकार हो जाना जागृति है।

प्रश्न : सतत क्षरणशील रहनेवाला सरोवर कौन-सा है ?

उत्तर : कर्मेन्द्रियाँ (वाक्, पाणि, पाद, उपस्थ आदि) अपने-अपने विषय की अभिलाषा से ललचाती रहती हैं। शिवयोगी को इन्द्रियों को जीतकर मन को साक्षात्कार के मार्ग में सावधानी से जागृत रखना चाहिये।

प्रश्न : मानव के पास शिव को समर्पित करने योग्य क्या है ?

उत्तर : जीवात्मा-परमात्मा में ऐक्य पानेवाला ज्ञान

शिवार्पण करने योग्य है। लल्ली, तू उसे अपने को देकर निश्चिन्त हो जा।

प्रश्न : स्वयं को आखिर में समा देने का अति उन्नत स्थान कौन-सा है ?

उत्तर : परमपद, शिवतत्त्व। लल्ली, तेरी आत्म-स्थिति। वस्तुतः तत्त्व-दृष्टि से विमर्श करने से इस जीवात्मा को किसी प्रकार का बन्धन बाध्य नहीं कर पाता, क्योंकि आत्मा निर्मल, शुद्ध, निर्विकार है। जन्म-मरण, सुख-दुःख—ये सब जीवात्मा की संसार-यात्रा में होनेवाली घटनाएँ हैं। इनका लक्ष्य परब्रह्मप्राप्ति : अध्यात्मस्थिति है।

मूल्य : १ रुपया ५० पैसे

मूल्य : १ रुपया ५० पैसे